डरना मना है

मोहनपुर का श्मशान

हेमेन्द्र कुमार राय़

अनुवादक

जयदीप शेखर

Cover Photo Credit: Image by maniacvector on Freepik

मोहनपुर का श्मशान

बँगला डरावनी कहानी 'मोहनपुरेर श्मशान' का हिन्दी अनुवाद

मूल लेखक

हेमेन्द्र कुमार राय

अनुवादक

जयदीप शेखर

PREVIEW COPY

जगप्रभा

Cover Photo Credit:
lantern-glowing-with-candle-inside_84718195.
Image by maniacvector on Freepik.

-: eBook :-

Mohanpur ka Shmashaan: Crematorium of Mohanpur
Hindi translation of the Bengali horror story 'Mohanpurer Shmashaan.'
Original author: Hemendra Kumar Roy (1888-1963)
Hindi translation: Jaydeep Das
(Pen name- Jaydeep Shekhar)
Copyright © 2023 Translator
Published by:
JagPrabha
Barharwa (SBG), JH- 816101
jagprabha.in | jagprabha.bhw@gmail.com
Price: ₹ 75.00

हेमेन्द्र कुमार राय

(1888 - 1963)

बँगला में किशोर-साहित्य के एक लोकप्रिय कथाकार। बाल-किशोरों के लिए सैकड़ों कहानियों एवं लघु उपन्यासों की रचना की- बड़ों के लिए भी बहुत कुछ लिखा। 1930 से 1960 के दशकों में उनकी कहानियों के बिना बाल-किशोर पत्रिकाएं अधूरी-सी लगती थीं। मुख्यरूप से उन्होंने दुस्साहसिक (Adventure), जासूसी (Detective) और परालौकिक (Supernatural), कहानियाँ लिखी हैं। कहानियों में रहस्य (Mystery), रोमांच (Thrill) और भय (Horror) का ऐसा पुट होता है कि दम साधकर कहानियों को पढ़ना पड़ता है। कुछ कहानियाँ खजाने की खोज (Treasure hunt) और वैज्ञानिक कपोल-कल्पना (Science-fiction) पर भी आधारित हैं। उनकी रची 'कुमार-बिमल' और 'जयन्त-माणिक' श्रृंखलाएं अपने समय में बहुत लोकप्रिय हुई थीं- पहली दुस्साहसिक कहानियों की तथा दूसरी जासूसी कहानियों की श्रृंखला है। उनकी रची परालौकिक कहानियों को पढ़ने का अलग ही रोमांच है।

***

मोहनपुर का श्मशान 6
एक तैलचित्र 6
नायक-नायिका परिचय 8
मोहनपुर के महाराजा महेन्द्रनारायण 11
महाराजा का प्रस्ताव 14
भयावह महाराजा 18
मोहनपुर 22
तांत्रिक 26
एक युग 29

मोहनपुर का श्मशान

एक तैलचित्र

मैं जिनका जीवन-चरित सुनाने जा रहा हूँ, उनका नाम था- आनन्दमोहन सेन। मेरा उनसे परिचय नहीं था, कभी देखा भी नहीं उनको; बहुत सम्भव है कि उनकी मृत्यु मेरे जन्म से पहले ही हो गयी थी।

आप पूछ सकते हैं कि ऐसे व्यक्ति की जीवन-कहानी से मैं परिचित कैसे हुआ? पहले इस जिज्ञासा का उत्तर दे देना उचित होगा, नहीं तो आप लोग सोच सकते हैं कि अपनी मनगढ़न्त एक बे-सिर-पैर की कहानी सुनाकर मैं खामखा आप लोगों के रोंगटे खड़े कर देना चाहता हूँ।

इस बीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग में आनन्दमोहन की कहानी विश्वसनीय नहीं लगेगी- यह मैं स्वीकार करता हूँ, लेकिन जिस कहानी की रचना मैंने स्वयं नहीं की है, उसके सत्य या मिथ्या होने की एकतरफा डिक्री जारी करने का अधिकार मुझे नहीं है। मेरी तरफ से इस कहानी पर विश्वास करने या न करने के लिए आप लोग पूरी तरह स्वतंत्र हैं।

शंकर बसु एक अध्यापक और मेरे मित्र थे। उस बार की पूजा की छुट्टियाँ बिताने के लिए वे मुझे अपने साथ अपने गाँव ले गये थे। उनका गाँव बर्द्धमान जिले में था दामोदर नदी के किनारे। यहाँ पहले मैं कभी नहीं आया था।

उनके घर के बैठकखाने में घुसते ही एक बड़े-से तैलचित्र ने मेरा ध्यान आकर्षित किया।

तैलचित्र का विषयवस्तु इस प्रकार से था-:

चारों तरफ अन्धेरा। एक युवती अपना दाहिना हाथ उठाकर पुराने समय का एक लालटेन थामे खड़ी थी। युवती का पूरा शरीर अन्धेरे में घुल-मिल रहा था- केवल उसका चेहरा स्पष्ट दिखायी पड़ रहा था। अनुपम सौन्दर्य से भरा जीवन्त चेहरा था वह। चित्र में एक तरफ धुंधले प्रकाश व धुंधले अन्धेरे में कोई और भी खड़ा नजर आ रहा था। वह एक युवक था और उसके चेहरे पर उभरा हुआ था चरम विस्मय एवं दारूण आतंक का भाव! सुन्दरी के लालटेन की रोशनी में

युवक ने शायद कोई ऐसा भयंकर दृश्य देख लिया था, जो किसी के रक्त को जमाकर बर्फ कर सकता था!

जाहिर है, अद्भुत विषयवस्तु थी। आखिर युवती क्या दिखलाने जा रही थी, या युवक को इतना डर ही क्यों लग रहा था? -चित्र में इस तरफ कोई ईशारा नहीं था।

शंकर ने हँसकर कहा, "हिमांशु, ऐसा रहस्यमयी चित्र तुमने पहले कभी नहीं देखा है शायद?"

"नहीं। चित्र में चित्रकार क्या दिखाना चाह रहा है? ऐसा लगता है कि यह कोई काल्पनिक चित्र नहीं है। चित्र में जिस घटना को उकेरा गया है, वह लगता है वास्तव में इस धरती पर घट चुकी है।"

"तुम्हारा अनुमान गलत नहीं है। यह चित्र एक सत्य घटना पर आधारित है।"

"क्या थी वह घटना?"

"ओह, भयानक! इस चित्र में एक दुखान्त नाटक के अन्तिम दृश्य को उभारा गया है! यह जो युवती है, उसका नाम लीला है और जो यह युवक है, उसका नाम आनन्दमोहन सेन है।"

"कौन हैं ये लोग?"

"लीला के पिता का नाम चन्द्रमोहन चौधरी था, उस जमाने के एक सुप्रसिद्ध चित्रकार थे। आनन्दमोहन उन्हीं का एक मेधावी शिष्य था। इस तैलचित्र को देखकर ही उसकी प्रतिभा को समझा जा सकता है, क्योंकि यह उसी का बनाया हुआ है। इनमें से कोई भी आज जीवित नहीं है।"

"मैं भी तो सुनूँ वह कहानी।"

"मेरे पिताजी ने स्वयं आनन्दमोहन के मुँह से यह कहानी सुनी थी और बहुत दिनों पहले पिताजी ने मुझे सुनायी थी। आनन्दमोहन मेरे पिताजी को बहुत मानते थे, इसलिए अपनी मृत्यु से पहले वे यह कलाकृति पिताजी को उपहार दे गये थे।"

"लेकिन वह कहानी क्या है?"

"थोड़ा धीरज धरो। धूप खिली ऐसी सुबह में ऐसी कहानी अस्वाभाविक जान पड़ेगी। अलौकिक कहानी सुनने का मजा तारों की छाँव में आता है।"

"यानि कहानी सिर्फ डरावनी नहीं, अलौकिक भी है!"

"सुनने पर समझ जाओगे।"

वह शाम वास्तव में कहानी सुनने के लायक थी।

शाम ढलने से पहले ही झमाझम बारिश शुरू हो गयी थी, तूफानी हवाओं के झोंकों से पेड़ लहरा रहे थे, आकाश बादलों से ढका था और धरती ढकी हुई थी घटाटोप अन्धकार से। रह-रह कर बादलों को फाड़कर अन्धेरे को चीरते हुए विद्युत की तीव्र शिखा चमक उठती थी और पल भर के लिए दामोदर की हिलोरें मारती जलतरंगें दिख जाती थीं।

लम्बा-चौड़ा बरामदा था। पुराने ढंग के गोल मार्बल के टेबल पर हैरिकेन लैम्प टिमटिमा रहा था, उसकी रोशनी बरामदे के अन्धकार को उद्भासित मात्र कर रही थी। स्पष्ट कुछ भी नजर नहीं आ रहा था और अस्पष्टता के बीच रहस्य का आभास मिल रहा था।

बाहर की ओर मुँह तथा दीवार की ओर पीठ करके दो पुरानी आरामकुर्सियों पर हम दोनों चुपचाप बैठे हुए थे। कहीं कोई आवाज और आहट नहीं थी। हम दोनों ही वर्षा में धुली इस नीरवता एवं निर्जनता का उपभोग कर रहे थे।

सम्भवतः आँधी-वर्षा से बचने के लिए ही एक बड़ा-सा चमगादड़ (बादुर) बरामदे में आकर ऊपर छत से सटकर पंख फड़फड़ाते हुए उड़ने लगा।

मैंने कहा, "अलौकिक कहानियों में लेखकगण अक्सर चमगादड़ों का जिक्र करते हैं, तुम्हारी कहानी में भी चमगादड़ है क्या?"

"नहीं।"

"तो फिर उसी भूल के सुधार के लिए चमगादड़ खुद ही आ गया है। रसिक बादुर को धन्यवाद। चलो, अब शुरू करो कहानी।"

शंकर ने कहानी शुरू की-

नायक-नायिका परिचय

आज से लगभग सत्तर साल पहले की बात है।

उस समय फोटोग्राफी का आविष्कार हालाँकि हो चुका था, लेकिन बँगाल में इसका प्रचलन नहीं के बराबर था। मनुष्य का जो अहम् भाव होता है, वह कोई कम नहीं होता है। मृत्यु से पहले ही मनुष्य इहलोक में अपना कोई स्थायी चिह्न

रख जाना चाहता है- और धनी लोगों के बीच यह स्वभाव कुछ ज्यादा पाया जाता है।

बँगाल के पुराने धनी-मानी लोगों के घरों के अन्दर जाते ही दिखायी पड़ता है- दीवारों पर बड़े-बड़े तैलचित्र एक के बाद एक टंगे हुए हैं; इनमें ज्यादातर पूर्वजों के व्यक्तिचित्र होते हैं। आज के धनी व निर्धन आम तौर पर फोटोग्राफ के माध्यम से अपने नश्वर रूप को धरती पर छोड़ जाने की चेष्टा करते हैं, लेकिन उस जमाने में केवल तैलचित्र का प्रचलन था। धनी लोग अपने नश्वर रंग-रूप को अविनश्वर बनाने के लिए बड़े-बड़े चित्रकारों को बुलवाया करते थे। उस जमाने के गरीब एवं साधारण गृहस्थ लोग इच्छा रहने पर भी इस विलासिता को प्रश्रय नहीं दे सकते थे, क्योंकि तैलचित्र बनवाने के लिए जितने रुपयों की जरुरत होती थी, उतना उनकी जेब में या बक्से में नहीं हुआ करता था।

चन्द्रबाबू उस जमाने के एक नामी चित्रकार थे। शिल्पी-समाज में उनकी ख्याति एक उस्ताद के रूप में थी और धनी-समाज में उन्हें अतिशय आदर प्राप्त था। अपनी केंचुली अर्थात् बाहरी रंग-रूप को अमर करने की प्रत्याशा में बहुत-से राजा-महाराजा और जमीन्दार उनके शरणागत होते थे।

चन्द्रबाबू के कुछ छात्र भी थे, जिन्हें समय-समय पर वे चित्रांकन पर ज्ञान दिया करते थे। उन छात्रों में आनन्दमोहन उनका प्रियपात्र था।

आनन्द एक अनाथ था। उसका घर-द्वार, आत्मीय-स्वजन कोई नहीं था, लेकिन उसकी चित्रांकनपटुता एवं उसके मधुर व्यवहार से चन्द्रबाबू उसके प्रति आकर्षित हुए थे। अपने घर में उन्होंने आनन्द को अपने स्वजन के समान आश्रय दे रखा था।

वैसे भी, चन्द्रबाबू के लिए आनन्द-जैसे एक विश्वस्त आदमी की अत्यन्त आवश्यकता थी। चन्द्रबाबू स्वयं अविवाहित थे- अपनी चित्रकारी में वे सर्वदा ऐसे खोये रहे कि प्रौढ़ होने तक उन्हें स्मरण ही नहीं आया कि मानव-समाज में 'विवाह' नामक एक अनुष्ठान का भी अस्तित्व है। उनके दिवंगत छोटे भाई की एक बेटी थी, नाम- लीला। लीला ही घर के सारे काम सम्भालती थी। घर के बाहर के जितने भी काम थे, उनकी जिम्मेदारी आनन्द पर थी। इन दोनों के ऊपर घर-गृहस्थी का सब कुछ सौंपकर चन्द्रबाबू कलालक्ष्मी की साधना में लीन रहा करते थे।

कोलकाता नगर की भीड़ चन्द्रबाबू को बिलकुल पसन्द नहीं थी, जबकि उनका काम कोलकाता से सम्पर्क रखे बिना चलना नहीं था। इसलिए वे एक ऐसे उपनगरीय इलाके में वास करते थे, नगर के निकट होते हुए भी जहाँ शान्त प्राकृतिक वातावरण उपलब्ध था।

हिमांशु, याद रखो कि ये सब सत्तर साल पहले की बातें हैं- यानि 1870 के आस-पास की। तब कोलकाता नगर में ही बिजली, मोटर, बस-जैसी आधुनिक युग की चीजें नहीं हुआ करती थीं। बहुत-सी सड़कों के किनारे तेल से जलने वाली बत्तियों की धुंधली रोशनी हुआ करती थी और बहुत-सी सड़कों के किनारे नालियाँ या खुली ड्रेन हुआ करती थीं। घर एवं बस्तियाँ तब कोलकाता में दूर-दूर में हुआ करती थीं। आज कोलकाता में तुम्हें सरकारी बाग छोड़कर कोई छोटी या बड़ी खुली जगह मिलेगी ही नहीं, लेकिन तब कोलकाता के अन्दर ही बहुत-से ऐसे खुले मैदान और छोटे-मोटे ऐसे जंगल होते थे कि जहाँ जाकर शहर में रहते हुए भी आंशिक ग्रामीण वातावरण देखने को मिल जाता था।

उन दिनों जब नगर ऐसा था, तो उपनगर बिलकुल गाँव-जैसा रहा होगा- यह तो तुम सहज ही अनुमान लगा सकते हो। तब टालीगंज-जैसे इलाकों में जाने पर ऐसा लगता था कि जंगल में आ गये हों! ऐसी ही एक जगह पर चन्द्रबाबू का निवास था। उनकी चित्रशाला थोड़ी दूरी पर थी- कोलकाता की सीमा पर।

असली कहानी सुनाने से पहले एक और बात बताकर रखूँ। लीला की उम्र सोलह-सतरह साल थी। उस जमाने इतनी उम्र की कुमारी कन्याओं की संख्या बहुत कम होती थी, लेकिन चन्द्रबाबू अँग्रेजी मिजाज के व्यक्ति थे। ब्रह्मसमाजी या क्रिश्चियन न होने पर भी वे मानते थे कि कम उम्र में लड़कियों का विवाह करना उचित नहीं है।

सिर्फ परमसुन्दरी कहकर ही लीला के रूप को ठीक-ठीक नहीं समझाया जा सकता। वह अद्भुत रूपसी थी। रंग, देहयष्टि, चेहरा- सब कुछ ऐसा था कि उसका जोड़ नहीं मिलता था। इस पर लीला का स्वभाव बहुत मधुर और विनम्र था।

अतः ऐसी एक लड़की के प्रति आनन्द आकृष्ट होगा- यह एक सहज बात थी। मन-ही-मन वह निकट भविष्य में लीला को अपनी सहधर्मिणी के रूप में कल्पना करता था। लीला भी सम्भवतः इसे समझती थी- भले आनन्द ने मुँह खोलकर कभी अपने मन की बात प्रकट नहीं की थी।